जैन रामकथा की पौराणिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि

✡ प्रा० डॉ० गजानन नरसिंह साठे,
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
रा० आ० पोद्दार वाणिज्य महाविद्यालय, माटुंगा, बम्बई

□

(१) रामकथा का विश्वव्यापकत्व

कहते हैं, आज से लगभग साढ़े चार सहस्र वर्ष * पूर्व अयोध्या में राम नाम के कोई एक परम प्रतापी राजा हो गए। उनकी महानता के कारण, उनके जीवन की अनेकानेक घटनाएँ तथा उनके व्यक्तित्व की विविध विशेषताएँ लोक-मानस पर अंकित हो गई थीं और उनकी कथा लोगों की जिह्वा पर घर किए हुई थीं। मौखिक परम्परा से प्रसारित उस कथा से सूत्र संकलित करते हुए, ई० पू० तीसरी-चौथी शताब्दी में वाल्मीकि नामक कवि ने अपने महाकाव्य "रामायण" अथवा "पौलस्त्य-वध" की संस्कृत में रचना की। इसी रामायण को भारत में "आदि काव्य" और उसके रचयिता को "आदिकवि" माना जाता है। यह काव्य ब्राह्मण परम्परा की रामकथात्मक रचनाओं का मूलाधार है। दूसरी ओर वीर (निर्वाण) शक ५३० में, अर्थात् ईसा की प्रथम शताब्दी में जैनाचार्य विमलसूरि ने प्राकृत में 'पउमचरियं' नामक कृति प्रस्तुत करते हुए, जैन-परम्परा की रामकथा लिपिबद्ध की। यही जैन रामकथा का सर्वप्रथम अर्थात् प्राचीनतम लिपिबद्ध रूप है।

वाल्मीकि रामायण से प्रेरणा लेकर अनेकानेक प्रतिभाशाली रचयिताओं ने परवर्ती काल में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में छोटे-बड़े काव्य, चम्पूकाव्य और नाटक लिखे। आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी रामकथात्मक रचनाएँ विपुल मात्रा में की गई हैं और आज भी उस विषय पर रचनाएँ की जा रही हैं।

अंग्रेजी, इतालियन, रूसी आदि योरोपीयन भाषाओं में भारत की रामकथात्मक कृतियों के अनुवाद हो गए हैं। पाश्चात्य अनुसन्धानकर्ताओं, समीक्षकों और पाठकों ने वाल्मीकि रामायण, उत्तर-रामचरित, रामचरितमानस जैसी कृतियों का अनुशीलन करते हुए, उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सीलोनी, बर्मी, चीनी, तिब्बती, कम्बोडियन, हिन्द चीनी आदि एशियायी भाषाओं में रामकथात्मक साहित्य न्यूनाधिक मात्रा में लिखा गया है।

× × ×

धार्मिक दृष्टि से भारत में वैदिक (ब्राह्मण), बौद्ध और जैन नामक तीन परम्पराएँ पर्याप्त रूप में विकसित हैं। इन तीनों ने रामकथा को अपनाते हुए, उसे अपने-अपने दृष्टिकोण के रंग में रंग दिया—हाँ, बौद्ध-परम्परा में यह कथा अपेक्षाकृत बहुत कम विकसित रही है। ब्राह्मण परम्परा ने नर राम को पहले भगवान विष्णु का अवतार माना और अन्त में परब्रह्म के स्थान पर स्थापित किया, तो जैनों ने उन्हें "शलाका पुरुष" माना। बौद्ध जातककथाओं के अनुसार, तथागत गौतम बुद्ध अपने पूर्वजन्म में राम के रूप में उत्पन्न हो गए थे। ब्राह्मण और जैन-परम्परा के आचार्यों तथा कवियों ने अपने-अपने दार्शनिक सिद्धान्तों, उपासना-मार्गों और साधना-प्रणालियों को प्रसारित करने के हेतु रामकथा को माध्यम बना लिया है। इस दृष्टि से अनेक पुराणों, पौराणिक कथाओं तथा पौराणिक शैली के चरित काव्यों की रचना विपुल मात्रा में हो गई है।

धार्मिक-दार्शनिक पक्ष को छोड़ भी दें, तो भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि रामकथा व्यावहारिक,

---

* जैन साहित्य की दृष्टि से राम को हुए ८६ हजार वर्ष हुए हैं। —सम्पादक देवेन्द्र मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारिवारिक, सामाजिक आदर्शों को प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत करती है। व्यक्ति, परिवार तथा समाज के प्रत्येक पक्ष को उसने स्पर्श किया है, जिससे उसके जीवन का वह अभिन्न अंग बन चुकी है।

सदियों पहले, रामकथा गंगोत्री से उत्पन्न गंगा की धारा सदृश थी; फिर गंगा-धारा की भाँति, रामकथा-धारा विकसित होती गई है और अब उसे आज का यह विश्वव्यापी रूप प्राप्त हो गया है। कहना न होगा कि यह विकास उसके प्रत्येक अंग का—कथावस्तु, चरित्र, उद्देश्य, देश-काल-स्थिति—समस्त पहलुओं का हो गया है।

(२) राम का गगनभेदी व्यक्तित्व और कृतित्व

रामकथा के विश्वव्यापकत्व का रहस्य नायक राम के गगनभेदी व्यक्तित्व में निहित है। प्रागैतिहासिक काल में राम का व्यक्तित्व मूलतः ही असाधारण रूप से उच्चकोटि का रहा होगा; तभी तो काल-जयी बनते हुए, ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी तक वह गगनभेदी बन सका था, अथवा बनाया जा सका था। अवश्य ही उस व्यक्तित्व में असाधारण विकासशीलता रही होगी। विकास को प्राप्त होते हुए उसका जो रूप वाल्मीकि के हाथ लगा, वह उनके हाथों पड़कर रामायण में अंकित होने के पश्चात् "नरत्व" से "नारायणत्व" की ओर विद्युत-गति से अग्रसर होता गया। वाल्मीकि के राम—

नियतात्मा महावीर्यो श्रुतिमान् धृतिमान् वशी।
बुद्धिमान, नीतिमान् वाग्मी श्रीमान् शत्रु निवर्हणः॥

थे। वे परम प्रतापी, धर्मज्ञ, सत्यसन्ध, प्रजाहितरत थे। वे समुद्र-सदृश गम्भीर और हिमालय-सदृश धीर थे। उनके व्यक्तित्व की और कितनी विशेषताओं को गिनाएँ?

× × ×

नायक राम को प्रतिनायक रावण का सामना करना था। यह प्रतिनायक नायक के लिए तुल्यबल था। कुछ पहलुओं में वह राम से अधिक शक्तिशाली था। राम का व्यक्तित्व तभी तो निखर उठा। राम के साथ न्याय था, धर्म था, नैतिकता से परिपूर्ण सदाचरण था, तो रावण के पक्ष में पाशविकता थी, अन्याय था, परधन-परदारासक्ति थी। अतः राम की विजय "रामत्व" की विजय थी।

राम के व्यक्तित्व के अनुरूप ही उनका कृतित्व था। दुष्कृत्यों का विनाश करते हुए, साधु-जनों की रक्षा करके उन्होंने सद्धर्म को प्रतिष्ठित किया। उनका राज्य "रामराज्य" था। भले ही उसे कोई स्वप्न-लोक माने, यूटोपिया कहे, फिर भी वह हर तरह से काम्य रहा है, अभीष्ट रहा है, आदर्श रहा है।

(३) कथा-साहित्य : धर्म-संस्कार का माध्यम

धर्म के प्रचार का, जन-मानस पर संस्कार उत्पन्न करने का सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है : कथा-साहित्य। प्रारम्भ में तो उसका प्रयोग अनजाने में ही हुआ होगा। परन्तु उसकी उपयोगिता और लोकप्रियता को देखकर परवर्ती काल में आचार्यों, नेताओं, गुरु-जनों तथा कविजनों ने उसका प्रयोग सहेतुक किया होगा। जन-साधारण के सम्मुख ये रचयिता धर्म, दर्शन, आदर्श आदि को कथा के माध्यम से प्रस्तुत करने लगे। फिर प्राचीन युग तो विशेष रूप में विभूति-पूजन का युग था। इसलिए हितोपदेश देने के लिए जैसे आचार्यों ने कल्पित कथाओं का आश्रय ग्रहण किया, वैसे ही इहलोक के महापुरुषों के आख्यान भी माध्यम के रूप में उनके द्वारा स्वीकार किए गए। उन कथाओं में अनेक तत्त्व जोड़ दिए गए। उससे इन कथाओं का तथा नायक आदि के चरित्र का विकास होता गया। उनमें दार्शनिक, साधनात्मक तत्त्वों का भी समावेश किया गया। उनकी लोकप्रियता देखकर उस कथा-साहित्यरूपी सामाजिक सम्पदा को विभिन्न-धर्मी या सम्प्रदायों के आचार्य उस पर अपना-अपना अधिकार जतलाने लगे। लोकप्रिय नायक या लोक-नायक को वे अपने-अपने सम्प्रदाय का प्रणेता या अनुयायी बताने लगे। इसी प्रक्रिया के फलस्वरूप राम, कृष्ण आदि वैदिक परम्परा में परब्रह्म स्वरूप माने गए, तो जैनों ने उन्हें जैनमतावलम्बी "शलाका पुरुष" के रूप में चित्रित किया। नारद जैसे ऋषि पर भी ब्राह्मण, बौद्ध और जैन तीनों सम्प्रदाय अपना अधिकार बताते हुए, उसे अपने-अपने सम्प्रदाय का प्रचारक मानते हैं इन बातों को देखकर भदन्त आनन्द कौशल्यायन की यह उक्ति समीचीन जान पड़ती है—"हमारा अनुमान है कि किसी अंश में अबौद्ध और बौद्ध साहित्य, दोनों ही, एक ही परम्परा के ऋणी हैं। प्राचीनकाल का साहित्य आज की तरह स्पष्ट रूप से बौद्ध और अबौद्ध विभाग में विभक्त नहीं था। उस समय एक ही कथा ने बौद्धों के हाथों बौद्ध रूप और अबौद्ध कलाकारों के हाथों पड़कर अबौद्ध रूप धारण किया होगा।" भदन्त आनन्द कौशल्यायन ने यह रामकथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्धी जातककथाओं की और बौद्ध साहित्य की चर्चा करते हुए कहा है। अबौद्ध से उनका मतलब है ब्राह्मण और जैन परम्पराओं का साहित्य। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ही रामकथा ने ब्राह्मण, बौद्ध और जैन रूप किस स्थिति में ग्रहण किए होंगे।

(४) जैन रामकथा

नामावली तथा परम्परागत कथा-सूत्रों के आधार पर विमलसूरि ने प्राकृत में जो 'पउमचरियं' लिखा, आचार्य रविषेण ने उसका पल्लवित रूपान्तर संस्कृत में 'पद्म पुराण' नाम से प्रस्तुत किया (सप्तम शताब्दी का उत्तरार्ध)। उसका विकसित रूप स्वयम्भुदेव कृत अपभ्रंश में लिखित 'पउमचरिउ' में उपलब्ध है (नवम शताब्दी)। विमलसूरि के पउमचरियं की परम्परा के अतिरिक्त, जैन रामकथा का और एक रूप उपलब्ध है, जो गुणभद्रकृत 'महापुराण' में पाया जाता है (नवम शताब्दी)। फिर भी विमलसूरि की परम्परा की रामकथा जैनधर्म के दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में सर्वाधिक लोकप्रिय है।

(अ) विमलसूरि की परम्परा की रामकथा

विद्याधर वंश की राक्षस वंश नामक शाखा में रावण नामक परम प्रतापी राजा लंका का अधिपति था। वह परम तेजस्वी, जिन-भक्त तथा परम प्रतापी था। कुम्भकर्ण और विभीषण उसके बन्धु थे, मेघनाद (इन्द्रजित) उसका पुत्र था। रावण ने तपोबल से एक सहस्र विद्याएँ प्राप्त कीं। फिर उसने कुबेर से लंका का राज्य और पुष्पक विमान जीत लिया। तदनन्तर इन्द्र, वरुण, यम आदि विद्याधर राजाओं को जीतकर वह भरत क्षेत्र के तीन खण्डों का अधिपति हो गया।

इधर अयोध्यापति दशरथ के राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामक चार पुत्र थे। ज्योतिषियों ने कहा था सीता के कारण कि दशरथ के पुत्र के हाथों रावण का वध होगा, इसलिए रावण की रक्षा के हेतु विभीषण ने दशरथ और जनक को मार डालने का एक बार यत्न भी किया था, जिसमें वह असफल हो गया था। राम-लक्ष्मण ने बर्बर-शबरों से मिथिला की रक्षा करने में जनक की सहायता की थी। तब राम के प्रताप से प्रसन्न होकर, जनक ने अपनी पुत्री सीता राम को विवाह में प्रदान करने की घोषणा की। परन्तु चन्द्रगति नामक विद्याधर राजा के षड्यन्त्र में उलझने के कारण, जनक ने सीता का स्वयंवर आयोजित किया। उसमें राम-लक्ष्मण ने क्रमशः वज्रावर्त और सागरावर्त धनुषों पर प्रत्यंचा चढ़ाई, तो राम-सीता का ब्याह हुआ। उस अवसर पर शक्तिवर्धन की आठ कन्याओं ने लक्ष्मण का वरण किया।

कुछ वर्ष पश्चात् दशरथ ने जीवन और जगत की असारता अनुभव करने पर राम को राज्य देने और स्वयं प्रव्रज्या ग्रहण करने की घोषणा की। परन्तु केकया (कैकेयी) ने दशरथ द्वारा दिए हुए वर के आधार पर अपने पुत्र भरत के लिए राज्य माँगा, तो कटुता टालने के लिए राम ने स्वयं वनवास के लिए जाना निश्चय किया और वे सीता और लक्ष्मण को साथ में लेकर अयोध्या से विदा हो गए। इधर दशरथ ने भरत को उसकी इच्छा के विरुद्ध राज्य दिया और स्वयं दीक्षा ली। तदनंतर, भरत ने कैकेयी सहित राम से चित्रकूट पर मिलकर उनसे अयोध्या लौट आने की विनती की, परन्तु सोलह वर्ष के पश्चात् वन से लौटने का अभिवचन देकर, उन्होंने उसे अस्वीकार किया।

चित्रकूट से आगे बढ़कर दशपुर, कुवरनगर, अरुणग्राम, जीवंतनगर, नन्दावर्त, जयन्तपुर, क्षेमांजलि होते हुए वे वंशस्थल नगर पहुँचे। वंशस्थल नगर में मुनियों को उपसर्ग से बचाते हुए उनकी उपस्थिति में राम और सीता ने कुछ व्रत ग्रहण किए। मार्ग में लक्ष्मण ने अनेक प्रसंगों में अपनी वीरता प्रदर्शित की और अनेक कन्याओं का पाणिग्रहण भी किया। घूमते-घामते वे दण्डकारण्य में आकर, गोदावरी के तट पर लता-मण्डप में रहने लगे। वहीं दो मुनियों की सेवा करते हुए उनकी जटायु से भेंट हुई, जिसे सीता ने पुत्र मानकर अपने पास रख लिया। एक दिन लक्ष्मण के हाथों सूर्यहास नामक खड्ग आया और उससे उन्होंने अनजाने चन्द्रनखा (शूर्पणखा) के शम्बु नामक तपस्या-रत पुत्र का वध किया। तब वह बदला लेने के लिए उनके पास आई, फिर भी राम-लक्ष्मण को देखकर उन पर वह आसक्त हो गई। उसके विवाह के प्रस्ताव को लक्ष्मण ने ठुकराया, तो उसने अपने पति एवं देवर—खर-दूषण को उकसाया फलस्वरूप खर सेनासहित राम-लक्ष्मण पर चढ़ दौड़ा, तो दूषण ने रावण को प्रोत्साहित किया। रावण सीता को देखकर काम-विह्वल हो गया, उसने अवलोकनी विद्या की सहायता से लक्ष्मण की मदद करने के निमित्त राम को सीता से दूर भेज दिया और सीता का अपहरण कर, वह लंका की ओर चल दिया। मार्ग में उसने जटायु को आहत किया, एक विद्याधर की विद्याएँ छीन लीं और सीता को लंका में लाकर अशोक वन में रख दिया उसने यह व्रत ले रखा था कि किसी स्त्री की इच्छा के विरुद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बलात्कार-पूर्वक उससे वह सम्भोग नहीं करेगा।' इसलिए उसे सीता को प्रसन्न कर अथवा उसे डरा-धमका कर विवाह करने के लिए प्रयत्न करना आवश्यक था।

इधर लक्ष्मण ने खर-दूषण-त्रिशिरा को सेना-सहित छिन्न-भिन्न कर डाला और उनका राज्य विराधित को दे दिया। फिर सीता को अपहृत समझकर वे उसे खोजते हुए दक्षिण की ओर चल दिए। विराधित की सूचना के अनुसार, किष्किन्धा के निकट आने पर सुग्रीव राम-लक्ष्मण से मिला। उससे मित्रता करने के पश्चात् लक्ष्मण ने कोटि-शिला को उठाकर अपने बल का प्रमाण दिया। फिर माया सुग्रीव को पराजित कर राम-लक्ष्मण ने सुग्रीव को उसकी पत्नी तारा और राज्य की पुनः प्राप्ति करा दी। सुग्रीव पुनः किष्किन्धा का राजा बन गया। यद्यपि वानरों और राक्षसों की अठारह पीढ़ियों से मित्रता थी, फिर भी सुग्रीव अपने बहनोई रावण से सीता को प्राप्त कर लेने में राम की सहायता करने के लिए तैयार हो गया। सीता की खोज कर लेने की क्षमता केवल हनुमान में ही है, यह समझकर सुग्रीव ने हनुमान को राम के पक्ष में सम्मिलित कर लिया। हनुमान चन्द्रनखा का जामाता था, फिर भी रावण को कुमार्ग पर बढ़ते देखकर, वह उसके विरोध में राम का साथ देने को तैयार हो गया। अनेक संकटों का सामना करते हुए और महेन्द्र आदि अनेक राजाओं को पराजित कर राम के पक्ष में सम्मिलित कराते हुए वह लंका में पहुँचा। वह सीता से मिला; उसने रावण को सदुपदेश दिया और लंका को उध्वस्त करके लौट आया। फिर राम ने वानर-सेना सहित लंका पर आक्रमण किया। मार्ग में समुद्र, सेतु और सुवेल नामक राजा राम के पक्ष में सम्मिलित कराए गए। विभीषण भी रावण के पक्ष को छोड़कर राम की शरण में आ गया।

अंगद ने राम के दूत के रूप में रावण से मिलकर समझौता कराने का यत्न किया, परन्तु रावण और इन्द्रजित ने उसे अपमानित करते हुए उसकी सूचना को अस्वीकार किया। युद्ध शुरू हो गया। पहले दो दिनों में रावण के हस्त, प्रहस्त, आक्रोश आदि महायोद्धा मारे गए। तीसरे दिन के युद्ध में कुम्भकर्ण ने हनुमान को पकड़ लिया, परन्तु अंगद ने उसे मुक्त करा लिया। सुग्रीव, भामण्डल आदि को इन्द्रजित ने नागपाश में आबद्ध कर लिया, फिर विभीषण के कथन के अनुसार राम ने गारुड़ीविद्या का प्रयोग कर उन्हें मुक्त कर लिया। चौथे दिन के युद्ध में लक्ष्मण ने इन्द्रजित को और राम ने कुम्भकर्ण को पकड़ लिया। यह देखकर रावण ने विभीषण पर एक शक्ति चला दी, तो उसे बचाने के लिए आगे बढ़ा हुआ लक्ष्मण उस शक्ति से आहत हो गिर पड़ा। इस अवसर पर प्रतिचन्द्र की सूचना के अनुसार हनुमान द्रोणघन राजा की कन्या विशल्या को ले आया और उसके स्नान-जल से लक्ष्मण सचेत हो गया। फिर लक्ष्मण और विशल्या का विवाह हो गया।

तदनंतर रावण ने नंदीश्वर के उत्सव के अवसर पर बहुरूपिणी विद्या को सिद्ध किया। इधर अंगद आदि ने उसे विचलित करने का बहुत प्रयास किया, रावण की स्त्रियों को भी अपमानित किया था। फिर भी रावण अविचल रहा। अनन्तर उसने सीता का हृदय-परिवर्तन कर लेने का यत्न किया। परन्तु उसे हार माननी पड़ी। फिर उसने निश्चय किया कि राम-लक्ष्मण को पराजित करके वह उन्हें सीता लौटा देगा।

अंत में राम और रावण का सात दिन युद्ध हो गया। तत्पश्चात् लक्ष्मण आगे बढ़ा। उनके युद्ध के ग्यारहवें दिन रावण ने लक्ष्मण की ओर अपना चक्र फेंक दिया। परन्तु वह चक्र लक्ष्मण के हाथ में अनायास आ गया। लक्ष्मण ने उसी चक्र से रावण का वध किया।

तदनन्तर विभीषण ने रावण का दाह-संस्कार किया। फिर सीता को सम्मानपूर्वक राम के पास लाया गया। मुनि अप्रमेयबल का उपदेश सुनने पर इन्द्रजित, कुम्भकर्ण, मंदोदरी आदि ने दीक्षा ग्रहण की। फिर विभीषण का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। लंका में छः वर्ष बिताने के बाद राम आदि अयोध्या लौट गए। लक्ष्मण ने राज्य स्वीकार किया और भरत और कैकेयी ने प्रव्रज्या ग्रहण की।

× × ×

इसके पश्चात् जैन राम कथा में निम्नलिखित घटनाएँ मिलती हैं—

शत्रुघ्न द्वारा मथुरा के राजा मधु को पराजित करना—राम द्वारा गर्भवती सीता को वन में छुड़वा देना——राम के बहनोई वज्रजंघ द्वारा उसे आश्रय देना—लवण-अंकुश का जन्म, विवाह, राम-लक्ष्मण का सामना करना, लक्ष्मण के चक्र का प्रभावहीन हो जाना, नारद द्वारा उनका परिचय कराना—सीता की अग्नि-परीक्षा, दीक्षा ग्रहण कर आर्यिका होना, मृत्यु के पश्चात् सोलहवें स्वर्ग में इन्द्र के रूप में जन्म लेना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्ष्मण की मृत्यु—राम का विक्षिप्त-सा हो जाना—दीक्षा ग्रहण करना, तपस्या, केवलज्ञान की प्राप्ति—मोक्ष लाभ।

हनुमान, विभीषण आदि का दीक्षा ग्रहण करना—लक्ष्मण-रावण का नरक-वास।

× × ×

(५) दर्शन तथा पुराण

प्रायः सभी प्राचीन जातियों, देशों और धर्मों में अनेक परम्परागत कथा-कहानियाँ होती हैं। उनमें से कुछ का न्यूनाधिक ऐतिहासिक आधार होता है। ऐसी कथाओं में प्रायः प्राकृतिक घटनाओं, मानव-जाति की उत्पत्ति, सृष्टि की रचना, प्राचीन धार्मिक कृत्यों और सामाजिक रीति-रूढ़ियों के कुछ अत्युक्तिपूर्ण अथवा रूपकात्मक विवरण होते हैं। उनमें परम्परागत देवी-देवताओं और परमप्रतापी पुरुषों के जीवन वृत, राजवंशों की वंशावलियाँ आदि भी प्रस्तुत होती हैं। ऐसी बातें विशिष्ट जाति, धर्म या सम्प्रदाय की दार्शनिक, उपासनात्मक या साधनात्मक मान्यताओं के अनुकूल दिखाई देती हैं।

ब्राह्मण पुराणों की भाँति, जैन पुराण भी विद्यमान हैं। उनमें प्रधानतः २४ तीर्थंकरों, १२ चक्रवर्तियों, ६ बलदेवों, ६ वासुदेवों और ६ प्रतिवासुदेवों की कथाएँ हैं। इनके अतिरिक्त अनेक मुनियों, महापुरुषों, राजाओं की कथाएँ भी उनमें समाविष्ट हैं। प्राचीनकाल में जैन रामकथा भी पुराणों या पौराणिक शैली में लिखित चरितकाव्यों के रूप में प्रस्तुत की गई है। जैनों के पुराणों के अनुसार, राम का मूल नाम "पद्म" (प्रा० तथा अपभ्रंश पउम, पोम) था। इसके आधार पर रामकथा आचार्य विमलसूरि के प्राकृत "पउमचरियं" में, रविषेणाचार्य के संस्कृत 'पद्मपुराण' में तथा स्वयम्भुदेव के अपभ्रंश "पउमचरिउ" में ग्रथित है। ये तीनों रचनाएँ पौराणिक शैली में विरचित हैं। अतः कहना न होगा कि उनमें कुछ पौराणिक मान्यताएँ भी समाविष्ट हैं।

दर्शन वह विज्ञान है जिसमें प्राणियों को होने वाले ज्ञान या बोध, सब तत्त्वों तथा पदार्थों के मूल और आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, विश्व, सृष्टि आदि से सम्बन्ध रखने वाले नियमों, विधानों, सिद्धान्तों आदि का गम्भीर अध्ययन, निरूपण तथा विवेचन होता है। उसमें सब बातों के रहस्य, स्वरूप आदि का विचार करके तत्त्व, नियम आदि स्थिर किए हुए होते हैं।

भारत में प्राचीन काल में दर्शनशास्त्र पर्याप्त मात्रा में विकसित हो चुका था। सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा (वेदान्त) नामक छः वैदिक या आस्तिक दर्शन के भेद हैं, जबकि चार्वाक्, बौद्ध और जैन-दर्शन वैदिकेतर या नास्तिक दर्शन कहलाते हैं। वेदों को अस्वीकार करने के कारण, जैन-दर्शन को वैदिकों ने नास्तिक दर्शन कहा है।

(६) पौराणिक पृष्ठभूमि

जैन रामकथा के लिए जिन पौराणिक और दार्शनिक मान्यताओं का आश्रय लिया गया है, उनका संक्षिप्त उल्लेख नीचे किया जा रहा है। जैन रामकथा की दो परम्पराओं में से विमलसूरि की परम्परा की रामकथा जैनों के दोनों सम्प्रदायों में सर्वाधिक लोकप्रिय है; वह अधिक विकसित भी है। अतः जैन रामकथा की पौराणिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि का निम्नलिखित विवेचन मुख्यतः उसी के आधार पर किया जा रहा है। (प्राकृत) पउमचरियं, (संस्कृत) पद्मपुराण और (अपभ्रंश) पउमचरिउ आदि पौराणिक शैली में विरचित रामकथात्मक कृतियों में सृष्टि का स्वरूप, लोक-परलोक आदि के विषय में अनेक जैन मान्यताएँ समाविष्ट हैं। यद्यपि ये मान्यताएँ रामकथा के अंग नहीं हैं, फिर भी रामकथा उनके रंग में रंगी हुई है। इसलिए उनका उल्लेख यहाँ पर संक्षेप में किया जा रहा है।

(क) कथा का कृतित्व—जैनों की मान्यता के अनुसार, रामकथा रूपी सरिता तीर्थंकर वर्धमान महावीर के मुख रूपी रंध्र से निःसृत होकर क्रम से बहती हुई चली आई है। वह तीर्थंकर के प्रथम गणधर गौतम स्वामी को प्राप्त हुई और मगध के राजा श्रेणिक की रामकथा-सम्बन्धी शंकाओं का समाधान करने के हेतु उन्होंने उसे सुनाई।

(ख) राम का काल—राम, रावण आदि पात्र बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत के तीर्थकाल में उत्पन्न हो गए थे। यह काल आज से सहस्रों वर्ष पूर्व पड़ता है।

(ग) राम का स्थान—राम भरतखण्ड के साकेत अयोध्या नगर में उत्पन्न हुए थे साकेत, अयोध्या, चित्रकूट, दसपुर, दण्डकवन, किष्किन्धा, लंका आदि रामकथा में उल्लिखित स्थान जंबूद्वीप के अन्तर्गत भरतखण्ड में स्थित हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(घ) काल-तत्त्व—जैन रामकथाकारों ने कथा-कथन के दौरान काल-तत्त्व सम्बन्धी जैन मान्यता प्रस्तुत की है। उनके अनुसार काल मौलिक तत्त्व है। निश्चयकाल और व्यवहारकाल नामक काल के दो भेदों में से व्यवहार काल दो भागों में विभक्त है—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। यह त्रिभुवनरूपी वल्मीक काल-भुजंगम ने परिवेष्टित कर रखा है। इस काल-भुजंगम के परिवार में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी नामक दो सर्पिणियाँ है। इनमें से प्रत्येक के छः-छः पुत्र हैं। उन सबका परिवार विशाल है। उत्सर्पिणी काल में पदार्थ मात्र का विकास होता रहता है, जबकि अवसर्पिणी काल में उसकी अवनति होती जाती है। अवसर्पिणी काल के दुःखमा-दुःखमा नामक अंश में संसार की सबसे अधिक बुरी स्थिति हो जाती है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, राम-लक्ष्मण-रावण आदि समस्त शलाका पुरुष अवसर्पिणी काल के चौथे आरे में हो गए हैं। पउमचरियं आदि के अनुसार मुनि अप्रमेयबल से काल-भुजंगम का वर्णन सुनकर इन्द्रजित, कुम्भकर्ण आदि ने दीक्षा ग्रहण की।

(ङ) लोक-तत्त्व—जैन मान्यता के अनुसार, पहले अनन्त आकाश है। उसके बीच कर्ता से रहित निरंजन और परिवर्तनशील तीन लोक हैं। इनमें से तिर्यक् लोक के अन्दर जंबूद्वीप में सुमेरु नामक स्वर्ण पर्वत के दाहिने भाग में छःखण्ड वाला भरतक्षेत्र है। भरतक्षेत्र के उत्तर में हिमवान पर्वत और मध्य में विजयार्ध पर्वत है। उत्तर भरतक्षेत्र के तीन और दक्षिण भरतक्षेत्र के तीन—कुल छः खण्ड हैं। कहा जा चुका है, राम आदि का सम्बन्ध इसी भरतक्षेत्र से है। छहों खण्डों का अधिपति चक्रवर्ती कहलाता है। भरत, सगर आदि बारह चक्रवर्ती हो गए हैं। तीन खण्डों का अधिपति अर्धचक्रवर्ती कहलाता है। लक्ष्मण और रावण अर्धचक्रवर्ती थे।

(च) स्वर्ग-नरक—श्वेताम्बर सम्प्रदाय बारह स्वर्ग मानता है, तो दिगम्बर सोलह। पुण्यवान जीव मृत्यु के बाद स्वर्ग में स्थान प्राप्त करके सुख-भोग कर लेते हैं। रामकथाकारों के अनुसार सीता मृत्यु के पश्चात्, अच्युत नामक स्वर्ग में इन्द्र के रूप में उत्पन्न हुई थी। जटायु और राम के सेनापति कृतान्तवक्त्र ने माहेन्द्र नामक चौथे स्वर्ग में जन्म लिया था। जैन पुराणों के अनुसार नरक सात हैं, जिनमें पापियों को उनके पाप की मात्रा के अनुसार मृत्यु के पश्चात् स्थान मिलता है। रत्नप्रभा आदि नरकों में अग्नि प्रज्वलित रहती है, वे नाना प्रकार के कीड़ों-कृमियों कीचड़ से भरे रहते हैं। नरक में असिपत्रवन तथा वैतरणी नदी का भी अस्तित्व है। पउमचरिउ के ८९वीं सन्धि में रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा आदि नरकों का उल्लेख है, उसमें वालुकाप्रभा नरक के एक दृश्य का भी वर्णन है। जैन रामकथा के अनुसार रावण, लक्ष्मण, शम्बु आदि को नरक-वास प्राप्त हो गया था।

स्वर्ग ऊर्ध्वलोक में हैं, तो नरक अधोलोक में।

(छ) योनियाँ, पूर्वजन्म और पुनर्जन्म—जैन पुराणों के अनुसार जीव को ८४ लाख योनियों में से भ्रमण करते हुए कृमि-कीट, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि का जन्म ग्रहण करना पड़ता है। प्रत्येक जन्म में कर्म करते हुए जीव मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और अपने कर्म के अनुसार पुनर्जन्म प्राप्त करता है। जैन रामकथा में राम, लक्ष्मण, सीता, रावण, जटायु आदि के पूर्वजन्मों की कथा बताई गई है। केवली राम ने लक्ष्मण आदि के परवर्ती जन्मों की झलक भी दिखाई है। जैन मान्यता के अनुसार तिर्यंच योनि के जीवों को भी तीर्थंकर के समवशरण में स्थान है और मनुष्येतर जीव तक तीर्थंकर के उपदेश को श्रवण करने के लिए इकट्ठे होते हैं। देव भी एक स्वतन्त्र योनि है और जीव सत्कर्म करने पर उसे प्राप्त कर सकता है। पउमचरिउं में कहा है कि मृत्यु के समय णमोकार मंत्र का श्रवण करने के कारण एक वानर स्वर्ग में देव के रूप में उत्पन्न हो गया था।

(ज) वंश—आदिकाल के चौदह कुलकरों में से अन्तिम कुलकर नाभिराजा के मरुदेवी नामक पत्नी से ऋषभदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र ही आदि तीर्थंकर माना जाता है। ऋषभदेव की एक उपाधि 'इक्ष्वाकु' थी इससे उनका वंश "इक्ष्वाकु" कहलाया। ऋषभदेव का भरत नामक पुत्र प्रथम चक्रवर्ती हो गया। उससे "सूर्यवंश" चल पड़ा। राम-लक्ष्मण इक्ष्वाकु वंश की इसी सूर्यवंशी शाखा में उत्पन्न हुए थे। ऋषभदेव के बाहुबली नामक पुत्र के वंश को "ऋषिवंश" कहते हैं। बाहुबली के पुत्र से "सोम" या चंद्रवंश चल पड़ा। मिथिलाधिपति जनक का सम्बन्ध इसी वंश से है। रामकथात्मक ग्रन्थों के रचयिताओं ने आवश्यकतानुसार इन वंशों की उत्पत्ति और विस्तार का और उनमें उत्पन्न महापुरुषों के प्रताप का वर्णन किया है।

जब भगवान ऋषभदेव तपस्या में लीन थे, तब कश्यप और महाकश्यप के पुत्र नमि और विनमि वहाँ उपस्थित होकर राज्य-सम्पदा की माँग करने लगे। तो धरणेन्द्र ने उन्हें विद्याएँ और विजयार्ध पर्वत की उत्तर तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दक्षिण श्रेणियाँ राज्य के रूप में प्रदान कीं। विद्याओं के धारक होने के कारण वे "विद्याधर" कहलाए और उनका वंश "विद्याधरवंश" नाम से विख्यात हुआ। इसी विद्याधरवंश की दो शाखाएँ हैं—राक्षसवंश और वानरवंश। राक्षस द्वीप के कारण राक्षसवंश नाम चल पड़ा, इस वंश को राक्षसी विद्या भी प्राप्त थी। वानरद्वीप के निवासी विद्याधर वानरवंशी कहलाए। उनके मुकुट, ध्वज आदि वानर-चिह्न से अंकित थे।

पउमचरियं आदि ग्रन्थों का प्रारम्भिक भाग विद्याधरों के प्रताप और लीलाओं की गाथा मात्र है। रावण आदि ने तपस्या करके विद्याएँ प्राप्त कीं। उनका प्रयोग करके युद्ध-भूमि में वानरों-राक्षसों ने अद्भुत लीलाएँ प्रदर्शित कीं। रामायण में विद्याधरों की विद्याओं का स्थान-स्थान पर उल्लेख मिलता है। रावण ने इन्द्र, वरुण, चंद्र आदि को जीत लिया था, वे देव नहीं थे, विद्याधर थे।

(झ) देव और देवियाँ—जैन रामकथा में देवों और देवियों का उल्लेख मिलता है। परन्तु ये इन्द्र आदि देव ब्राह्मण परम्परा के देवों से भिन्न हैं, वे कर्तुं मकर्तुं मसमर्थ नहीं हैं।

(ञ) शलाका पुरुष—कहा जा चुका है कि त्रेसठ शलाका पुरुषों की कथाएँ जैन पुराणों का वर्ण्य-विषय हैं। उनके अनुसार प्रत्येक कल्प में २४ तीर्थंकर और १२ चक्रवर्तियों के अतिरिक्त नौ बलदेव, नौ वासुदेव या नारायण और नौ प्रतिवासुदेव उत्पन्न होते हैं। इन नौ त्रयिओं में से प्रत्येक त्रयी के बलदेव-वासुदेव-प्रतिवासुदेव समकालीन होते हैं। बलदेव-वासुदेव तेजस्वी, ओजस्वी, परम प्रतापी, कान्त, काम्य, सुभग, प्रियदर्शन, महाबली और अपराजेय होते हैं वस्तुतः "बलदेव" और "वासुदेव" उपाधिविशेष हैं। वासुदेव तीन खण्डों के अधिपति, अर्थात् "अर्ध-चक्रवर्ती" माने जाते हैं। प्रतिवासुदेव का भी तीन खण्डभूमि पर आधिपत्य होता है। वस्तुतः वह भी महान पुरुष होता है, परन्तु जीवन के उत्तर काल में वह अधिकार के मद में अन्याय और अत्याचार करने लगता है। उस अन्याय को मिटाने के लिए वासुदेव को प्रतिवासुदेव से युद्ध करना पड़ता है। युद्ध में वासुदेव प्रतिवासुदेव को पराजित करके उसका वध करता है। हिंसा के कारण वासुदेव-प्रतिवासुदेव नरक में जाते हैं, जब कि बलदेव स्वर्ग अथवा मोक्ष-लाभ कर लेता है।

सहस्रों भवों में उत्तमोत्तम कर्म करते हुए विशिष्ट जीव बलदेव के रूप में उत्पन्न है, वह अहिंसा आदि व्रतों का धारी तथा स्वर्ग या मोक्षगामी होता है। तुलनात्मक दृष्टि से वासुदेव बलदेव की अपेक्षा अति उग्र स्वभाव का होता है, सांसारिक भोगविलास की भी अभिलाषा उसमें अधिक होती है।

रामायण के राम, लक्ष्मण और रावण क्रमशः आठवें बलदेव, आठवें वासुदेव और आठवें प्रतिवासुदेव माने गये हैं।

(७) दार्शनिक पृष्ठभूमि

(क) जीव : जैनदर्शन के अनुसार, जीव स्वतंत्र भौतिक तत्त्व है। उसका प्रमुख लक्षण है—चैतन्य, जिससे वह समस्त जड़ पदार्थों से भिन्न जाना जा सकता है। वह किसी से उत्पन्न नहीं है। वह न किसी का अंश है, न अन्त में किसी में विलीन हो जाता है। वह अनादि-निधन है; फिर भी वह देह-प्रमाण है। जीवों के दो भेद हैं—(१) संसारी जीव, अर्थात् वे जीव, जो अपने कर्म-संस्कारों के कारण नाना योनियों में उत्पन्न होते हुए शरीरों को धारण करते हुए जन्म-मरण द्वारा संसरण करते रहते हैं, और (२) मुक्त जीव, अर्थात् वे जीव जो अपने कर्म-संस्कारों से मुक्त होकर शुद्ध रूप में सदा स्थित रहते हैं।

जैन रामायणों में उनके रचयिताओं ने यथास्थान जीवों की स्थिति का वर्णन किया है। उदाहरण के लिए सीता के अपहरण के पश्चात् उसकी खोज करने वाले व्यथित-हृदय राम से दो चारणमुनि मिले। उन्होंने राम को ढाढ़स बँधाने के हेतु सुन्दर दिखाई देने वाली नारी के घिनौने रूप का उल्लेख किया और ऐसी नारी के उदर में जीव किस स्थिति में गर्भवास करता है, इसका वर्णन किया है।

संसारी जीव जुए में जुते हुए तेली के बैल की तरह संसार में भटकता हुआ कभी नहीं थकता। वह संसार में आते-जाते और मरते हुए सबको रुलाता है। खाते हुए उसने तीनों लोक खा डाले और जल-जलकर सारी धरती फूंक डाली। वह नट की तरह सैकड़ों रूप ग्रहण कर जन्म, जरा और मरण की परम्परा में भटकता रहता है। वे राम से कहते हैं, तुम और सीता दोनों सैकड़ों योनियों में जन्म पा चुके हो। (पउम चरिउ, संधि ३९)

जीव सम्बन्धी अधिक जानकारी हनुमान के शब्दों में दी गई है। रावण की सभा में हनुमान रावण को उप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देश देते हुए द्वादश अनुप्रेक्षाओं का विस्तारपूर्वक उल्लेख करता है। जैनदर्शन में इन द्वादश अनुप्रेक्षाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। हनुमान ने उनका विवरण प्रस्तुत करते हुए रावण से कहा (पउमचरिउ, संधि ४४)—इस अनित्य संसार में सांसारिक व्यक्ति अशरण होता है, वह असहाय है। उसके अनुसार जीव वस्तुतः निराधार, अशरण है; वह अपने पाप-कर्मों से आच्छन्न होकर अकेला ही उनके फलों को भोगता रहता है। उसके साथ उसके किए हुए सुकृत और दुष्कृत रहते हैं। वस्तुतः शरीर से पृथक् रहने पर भी जीव को उस घिनौने एवं अपवित्र शरीर के प्रति और उसके द्वारा सांसारिक भोग-विलास के प्रति बहुत आसक्ति होती है। (कहना न होगा कि रावण इसका मूर्तिमान उदाहरण है।) जीव असंख्यात हैं। उसकी चार गतियाँ हैं—देव, नरक, तिर्यंच, मनुष्य। जीव नित्य भिन्न-भिन्न रूप धारण करता हुआ मारता है, पिटता है, मरता है, रोता है, खाता है और खाया जाता है।

कहा जा चुका है कि जीव के विशिष्ट जन्म के सन्दर्भ में पूर्वजन्म होते हैं, परवर्ती जन्म भी होते हैं। जैन रामायण में उनके रचनाकारों ने राम, लक्ष्मण, सीता, रावण, जटायु, आदि के पूर्वभवों का वर्णन किया है। उन्होंने भामण्डल, लक्ष्मण, रावण आदि के परवर्ती भवों का भी चित्रण किया है।

जन्म और मृत्यु के सन्दर्भ में कहना होगा कि जीव के जीवत्व रूप भाव का नाश कभी भी नहीं होता। अर्थात् मृत्यु शरीर की होती है, न कि जीव की। स्वयम्भु ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जीव कलेवर को धारण करता है और उसे त्याग देता है। (संधि ५४,६ और १२)।

वस्तुतः प्रत्येक जीव में स्वभाव से अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तसामर्थ्य आदि गुण रहते हैं, परन्तु आवरणीय कर्मों के प्रभाव से उनकी अभिव्यक्ति नहीं होती। जीव कर्म से आबद्ध है, फिर भी उससे छुटकारा प्राप्त करके वह मुक्त हो सकता है। मुक्ति प्राप्त करने की योग्यता के अनुसार जीव के दो भेद हैं—भव्य और अभव्य। जो तपस्या एवं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र द्वारा सिद्ध-पद प्राप्त करने की योग्यता रखते हैं, वे 'भव्य' जीव कहलाते हैं। जो इसके विपरीत हैं, वे 'अभव्य' जीव हैं। जैन रामकथा में भरत भव्य या आसन्न भव्य है, उसे सांसारिक जीवन में कोई रुचि नहीं है। उसकी इस विरक्ति को देखकर कैकेयी चिन्तित है, और उसे राजकाज में उलझाये रखने के हेतु वह दशरथ से उसके लिए राज्य माँगती है। ये भव्य जीव यथाकाल दीक्षा लेते हैं और मोक्ष-लाभ करते हैं। राम भी मोक्ष-लाभ करने के हेतु ही उत्पन्न हुए हैं। दूसरी ओर रावण, लक्ष्मण दीक्षा ग्रहण नहीं करते। मुनि राम के कथन के अनुसार अनेकानेक जन्मों के पश्चात ये संसारी जीव मोक्ष लाभ करेंगे। इसका यह मतलब हुआ कि राम, भरत, हनुमान आदि सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करते हुए मोक्ष जाने की शक्ति प्राप्त करके उत्पन्न हुए हैं।

(ख) परमात्मा : जैनदर्शन के अनुसार आत्मा के तीन भेद हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। कर्म-फलस्वरूप अज्ञान से शरीरादि बाह्य पदार्थों में आसक्त तथा इन्द्रियों के विषयों में निमग्न जीव बहिरात्मा कहा जाता है। इस दृष्टि से चन्द्रनखा (शूर्पणखा), माया-सुग्रीव बहिरात्मा हैं, रावण भी अधिकांशतः बहिरात्मा है। जिसकी दृष्टि बाह्य पदार्थों से हटकर अपनी आत्मा की ओर उन्मुख होती है और स्व-पर का विवेक होने से जो लौकिक कार्यों में अनासक्त और आत्मिक कार्यों में सावधान होता है, उसे अन्तरात्मा कहते हैं। दशरथ, राम, हनुमान आदि अपने जीवन के उत्तरकाल में इस प्रकार के अन्तरात्मा हो गए। घरबार आदि का परित्याग करके साधु-जीवन को अंगीकार करते हुए जो आत्मस्वरूप की साधना में तत्पर हो जाते हैं, वे उत्तम अन्तरात्मा है। इस दृष्टि से दशरथ, राम, सीता, भरत, हनुमान, बाली आदि अन्त में उत्तम अन्तरात्मा हो गए। जो उत्तम अन्तरात्मा की सर्वोच्च दशा में पहुँच कर अपने आन्तरिक विकारों का अभाव कर परम कैवल्य को प्राप्त हो जाता है, उसे परमात्मा कहते हैं। इस दृष्टि से मुनि कुलभूषण, अप्रमेयबल परमात्मा हैं, राम भी अन्त में मुनिधर्म स्वीकार करके केवलज्ञान का उपार्जन करने में समर्थ हो गए है। अतः राम अन्त में परमात्मा हो गए हैं।

जैनदर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रत्येक आत्मा को यह विश्वास दिलाता है कि वह अपना विकास करते-करते स्वयं परमात्मा बन सकता है। राम उसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

(ग) मोक्ष : जैन-दर्शन के अनुसार जीव के सम्पूर्ण कर्मों के क्षय हो जाने को 'मोक्ष' कहते हैं। जिस मार्ग से कर्म का 'आस्रव' है, उसका 'संवर' या निरोध करते हुए कर्मों की 'निर्जरा' (विनाश) करने से जीव को मोक्ष लाभ हो जाता है। इस स्थिति में आत्मा का विनाश या किसी अन्य परमात्मा में विलीन होना अपेक्षित नहीं है। मोक्ष को प्राप्त हुआ जीव निर्मल, निश्चल और अनन्तचैतन्यमय हो जाता है। राम आदि इसी प्रकार के जीव हो गए हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव स्वभावतः ऊर्ध्वगामी होता है। अतः कर्मों के नष्ट हो जाने पर जीव शरीर से वियुक्त हो जाता है और लोक के अन्त को प्राप्त करता है। लोकाग्र में जिस स्थान पर मुक्त जीव ठहरता है, उसे 'सिद्धशिला' कहते हैं। रामायण के अनेकानेक पात्र मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं और सिद्धशिला पर निवास करने के अधिकारी हो जाते हैं।

(घ) **मनुष्य-जीवन का चरम लक्ष्य**—जैनदर्शन के अनुसार मनुष्य-जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति है। सांसारिक धन-वैभव एवं सुखोपभोग की सारहीनता अनुभव करके उसका त्याग करना और प्रव्रज्या लेना मोक्ष-लाभ के मार्ग का महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। जैन रामकथा के अनुसार दशरथ, बाली, राम, सीता, हनुमान आदि पात्र प्रव्रज्या लेते हैं और मोक्ष-मार्ग पर अग्रसर हो जाते है। रावण, लक्ष्मण, शम्बु आदि ऐसा नहीं करते, इसलिए उन्हें मोक्ष प्राप्ति के पहले और भी अनेकानेक योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा।

(ङ) **जगत** : जैनदर्शन के अनुसार जगत को अनन्त और सर्वव्यापी आकाश में स्थान प्राप्त है। इस जगत का कोई निर्माता नहीं है, इस दृष्टि से वह स्वयंसिद्ध तथा अनादि है। फिर भी प्रत्येक द्रव्य की भाँति वह परिणमन करता रहता है। अतः वह सारहीन है, प्रत्येक-स्थिति क्षणिक है। भोगविलास, धन-दौलत आदि की निःसारता भव्य जीव को उसका परित्याग करने की प्रेरणा देती है। इसका भान होने पर दशरथ ने सर्वत्याग करके प्रव्रज्या ग्रहण की। एक तारे के गिर कर विनष्ट होने को देखकर हनुमान ने वही किया। इस निःसार राज्य-वैभव के लिए लड़ाई-झगड़ा क्यों करें?—इस विचार से बाली ने राज्यश्री सुग्रीव को सौंप कर प्रव्रज्या ग्रहण की। भरत ने राम को राज्य लौटा-कर वही किया।

(च) **माया** : 'पाइअसद्दमहण्णव' के अनुसार 'माया' का अर्थ है—छल-कपट, धोखा। जैन-ग्रन्थों के अनुसार माया चार कषायों में से एक है। मन, वचन और काय का प्रयोग जहाँ पर विषमरूप से किया जाए, वहाँ मायाकषाय समझना चाहिए। अर्थात्, दूसरे को धोखा देने या ठगने के अभिप्राय से अपने मन के अभिप्राय को छिपाकर दूसरा आशय प्रकट करनेवाले वचन बोलने या शरीर से वैसी कोई चेष्टा करने तथा इसी प्रकार वचन और काय में भी वैषम्य रखने को माया कहते हैं। माया आदि कषाय आत्मा को कसकर उसमें विकृति उत्पन्न करते हैं और उसे कर्ममल से मलिन करते हैं। जैन रामकथा के अन्तर्गत मायासुग्रीव प्रकरण माया का मूर्तिमान उदाहरण है। सहस्रगति नामक विद्याधर ने छल-कपटपूर्वक सुग्रीव का-सा रूप धारण करके उसकी पत्नी राज्य आदि छीन लिया और उसकी प्रजा को भी चकमा दिया। रावण ने भी अवलोकनी विद्या की सहायता से सिंहनाद उत्पन्न करवाकर सीता की रक्षा करने वाले राम को धोखा दिया और राम के दूर चले जाने पर सीता का अपहरण किया। इस प्रकार रावण माया कषाय से लिप्त हो गया। चन्द्रनखा द्वारा राम-लक्ष्मण को धोखा देने का यत्न भी इसी श्रेणी में आता है।

(छ) **कर्म** : भारतीय दर्शन में कर्मसिद्धान्त विशिष्ट महत्त्व रखता है। इसे भारत के सभी दार्शनिक संप्रदायों ने स्वीकार किया है, फिर भी उसकी व्याख्या अपने-अपने ढंग से की है। जैनदर्शन में कर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण वैज्ञानिक है। यहाँ संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि शरीर, मन और वचन की क्रिया या 'योग' से आकर्षित पुद्गल पर-माणु आत्मा में चिपकते हैं। आत्मा के सम्पर्क में आने वाले कार्माण वर्गणा के परमाणु 'कर्म' कहलाते हैं। आत्मा के सम्पर्क में योगाकर्षित परमाणुओं के आने को 'आस्रव', रोकने को 'संवर' और उनके झड़ जाने को निर्जरा कहते हैं। कर्म के अनेकानेक भेद बताए गए हैं। जीव का प्रत्येक कर्म अपना कुछ-न-कुछ प्रभाव दिखाता ही है। साधक घाति-कर्मों का क्षय करके परमात्म पद प्राप्त करता है। जैन रामायणों में बाली, राम आदि द्वारा घातिकर्मों के क्षय कर देने का न्यूनाधिक विस्तार से उल्लेख मिलता है।

जैनदर्शन के अनुसार कर्म का कर्ता और कर्म-फल का भोक्ता स्वयं जीव होता है। साधक विशिष्ट नियम के अनुसार आचरण करता हुआ अपना विकास स्वयं कर लेता है। ब्राह्मण-परंपरा की रामकथा में ऋषि-मुनियों के अभिशाप या वरदान तथा राम द्वारा किसी का उद्धार करते हुए उसे मोक्ष—मुक्ति दिला देने की कथाएँ मिलती हैं, परन्तु जैन रामकथा में ऐसी कथाएँ नहीं मिलतीं। राम न किसी का उद्धार करते हैं न कोई मुनि किसी को अभिशाप देता है। रावण सीता के साथ बलात्कार इसलिए नहीं करता कि उसने वैसा व्रत ले रखा है।

जैन कर्म सिद्धान्त की विशिष्टता के कारण जैन रामकथा के व्यक्तित्व और उनकी कथा का रंग ही बदल गया है।

(ज) **दर्शन** : जीव के चैतन्य लक्षण का तात्पर्य 'उपयोग' से है और उपयोग के दर्शन और ज्ञान नामक दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेद हैं। वस्तुतः अपनी सत्ता की अनुभूति या आत्मचेतना ही 'दर्शन' कहलाती है। तत्त्वरूप अर्थों के श्रद्धान को तत्त्वार्थ श्रद्धान कहते हैं और इसी का नाम 'सम्यग्दर्शन' है। जैनदर्शन के अनुसार 'सम्यग्दर्शन' मोक्ष-प्राप्ति के त्रिविध साधनों में से एक है—वह आत्मा का गुण है। उसके उदित होने पर आत्मा में प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा आदि भाव प्रकट होते हैं। जैन रामायणों में बाली, राम तथा मुनियों द्वारा सम्यग्दर्शन के उपार्जन का उल्लेख मिलता है।

(ञ) ज्ञान : जैन शास्त्रों के अनुसार जीव के उपयोग लक्षण के भेदों में से बाह्य पदार्थों को अवगत करने की शक्ति का नाम ज्ञान है। साधक में ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म से आच्छन्न रहता है और साधक विशिष्ट साधना द्वारा उस कर्म का क्षय करते हुए ज्ञान को प्राप्त करता है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए सम्यक्ज्ञान आवश्यक है। जिसमें भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल के विषयभूत अनन्त गुप्त-पर्यायों से युक्त पदार्थ यथार्थ रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। उसे सम्यक्ज्ञान कहते हैं। ज्ञान के अनेक भेद बतलाए जाते हैं। यहाँ रामकथा के सन्दर्भ में उनमें से केवलज्ञान का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। त्रिलोक और त्रिकाल के समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जानने को केवलज्ञान कहते हैं। ज्ञानावरणीय आदि चारों घातिकर्मों का नाश करने से साधक को केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है। तब वह साधक 'केवली' कहलाता है। जैन रामकथा में बाली, राम आदि के केवली हो जाने का उल्लेख मिलता है। इसी के बल पर मुनि राम ने दशरथ, भामण्डल, लवण, अंकुश, लक्ष्मण आदि के अन्यान्य भवों का वर्णन किया। केवलज्ञान से युक्त आत्मा परमात्मा हो जाता है और उसके उत्पन्न हो जाने के अवसर पर ज्ञानकल्याण उत्सव मानने के लिए इन्द्र आदि देव उपस्थित हैं।

(८) साधना-पक्ष

(क) चारित्र : जैन शास्त्रों के अनुसार मोक्ष-प्राप्ति के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र अत्यन्त आवश्यक हैं। दर्शन और ज्ञान की उपलब्धि के लिए चारित्र सम्बन्धी साधनात्मक पक्ष नींव के बराबर है। हिंसा, अनृत, चौर्य, कुशील और परिग्रह—इन पाँच पापों का त्याग करने और पर-पदार्थों में आसक्ति, राग, द्वेष न रखते हुए उदासीनता या अनासक्ति अनुभव करने को चारित्र कहते हैं।

पाँच पापों का स्थूलरूप से त्याग करने को देशचारित्र कहते हैं। देशचारित्र का धारक व्यक्ति श्रावक कहलाता है। श्रावक के पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत नामक बारह व्रत बताए जाते हैं।

पंच पापों का पूर्णतः त्याग करने को महाव्रत कहते हैं—यही सकल चारित्र है और यह मुनिधर्म का अनिवार्य अंग है।

जैन रामकथात्मक ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर उपर्युक्त व्रतों और उनके फलों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त हम यह कह सकते हैं कि रामकथा के पात्रों के चारित्रिक गठन का परीक्षण इस सन्दर्भ में किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, राम हिंसा, अचौर्य, अनृत आदि पापों से मुक्त हैं। इसलिए वे सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं। लक्ष्मण के हाथों हिंसा होती है, अतः वह नरक में जाता है। दूसरी ओर रावण हिंसाचार करता है, सीता का अपहरण करता है, असत्य का आश्रय करके सीता, राम आदि को धोखा देने का यत्न करता है, परस्त्री के प्रति उसे आसक्ति है, धनादि का परिग्रह करता है। इसलिए अन्य उत्तम गुणों के होते हुए भी उसका अधःपतन हो जाता है। राम से अहिंसा व्रत का निर्वाह कराना है, संभवतः इसलिए रावण, खर-दूषण, आदि के वध का उत्तरदायित्व जैन रामकथाकारों ने लक्ष्मण पर छोड़ दिया।

शिक्षाव्रतों के अन्तर्गत जिन-वंदना, उपवास, आहारदान और संल्लेखना नामक व्रत आते हैं। स्वयम्भु आदि कवियों ने इनका विवेचन किया है।

(ख) भक्ति : साधना सम्बन्धी आचारपक्ष में जैन-शास्त्र भक्ति का महत्वपूर्ण स्थान मानते हैं। जीव को अपने कल्याण के लिए जिनेन्द्र के प्रति श्रद्धापूर्वक भक्तिभाव रखना आवश्यक है। जिनेन्द्र के अतिरिक्त किसी अन्य के प्रति नतमस्तक न होने या किसी को प्रणाम न करने की प्रतिज्ञा करने वाले व्यक्ति जैन रामकथा में मिलते हैं। ऐसी प्रतिज्ञा के कारण बाली को रावण का सामना करना पड़ा, तथा वज्रकर्ण को संकट झेलने पड़े।

जैन-शास्त्रों के अनुसार भक्ति के निम्नलिखित अंग माने जाते हैं—

पूजा-विधान, स्तुति-स्तोत्र, संस्तवन, वंदन, विनय, मंगल, महोत्सव।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहना न होगा कि ये सब भक्ति की अभिव्यक्ति की शैलियाँ मात्र हैं। भाव के विचार से इनमें एक-दूसरे में कोई अन्तर नहीं है।

स्तुति-स्तोत्र, स्तवन इत्यादि—आराध्य के गुणों की प्रशंसा करना स्तुति है। ऐसी स्तुतियाँ साधक के कर्ममल को दूर करने में सहायक होती हैं। जैन रामकथा के अनुसार राम-लक्ष्मण-सीता ने अयोध्या से निकलकर सिद्धवर कूट में विश्राम किया और फिर जिनेन्द्र की वन्दना की। उन्होंने सहस्रकूट पर स्थित जिनेन्द्र की स्तुति की थी। मुनि कुलभूषण देशभूषण को होने वाले उपद्रव को राम ने दूर किया। तदनन्तर जब मुनिवरों को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तो राम ने उनकी वन्दना की। हनुमान ने मन्दराचल पर स्तुति की। इस प्रकार की स्तुतियों के रामकथा में अनेक उदाहरण मिलते हैं। स्वयम्भु आदि जैन ग्रन्थकर्ता ग्रन्थारम्भ में जिनवन्दना करते हैं।

इस प्रकार **वन्दना** और **विनय** के भी उदाहरण पाए जाते हैं।

मंगल—जो मल को गलाकर नष्ट करता है, वह मंगल कहलाता है। उससे आत्मा शुद्ध होते हुए परमसुख का अनुभव करती है। राम द्वारा भगवान जिनेन्द्र की वन्दना करते हुए उनके अनेक नामों का स्मरण करना (पउमचरिउ, सन्धि ४३), रावण की कैलास यात्रा (सन्धि १३), नन्दीश्वर महोत्सव (सन्धि ७१) आदि मंगल भक्ति के उदाहरण है। कोटिशिला उठाने के पूर्व लक्ष्मण ने चारों मंगलों का उच्चारण किया (सन्धि ४४)।

महोत्सव—इसमें नृत्य, गायन, वादन, रथ-यात्रा आदि द्वारा भक्त की भक्ति की अभिव्यक्ति होती है। मुनियों के पूजन के पश्चात् सीता ने भक्ति-पूर्वक नृत्य किया था (सन्धि ३२)। रावण ने कैलास-उद्धरण के अनन्तर भक्ति-पूर्वक गायन किया था (सन्धि १३)। इसी प्रकार लक्ष्मण द्वारा गान करने (सन्धि ३२) और राम द्वारा सुघोष वीणा बजाने का उल्लेख मिलता है। हरिषेण प्रकरण में रथ-यात्रा का भी उल्लेख है। रावण ने लंका में बड़े उत्साह के साथ नन्दीश्वर उत्सव सम्पन्न किया था (सन्धि ७१)।

इस भक्ति भावना की अभिव्यक्ति के लिए अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, तीर्थंकर आदि आलम्बनस्वरूप है।

(ग) तप—जैन शास्त्रों के अनुसार, कर्म-निर्जरा के लिए जिस महान पुरुषार्थ या प्रयास की आवश्यकता होती है, उसे तप कहते हैं। तप के मुख्य दो भेद हैं—बाह्यतप और आभ्यन्तरतप। इनमें से प्रत्येक के छह-छह उपभेद हैं। जैन रामकथा में बताया गया है कि दशरथ, हनुमान, बाली, राम आदि अनेक व्यक्तियों ने यथाकाल घरबार का त्याग करके तप के लिए प्रस्थान किया।

तप का आचरण आसान नहीं है। तप करने वाले के मार्ग में अनेक बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं, तप करने वाले को प्रलोभन दिखाए जाते हैं, उपद्रव भी किया जाता है। फिर भी साधक को अविचल रहना चाहिए। मुनि देशभूषण-कुलभूषण का तप प्रकरण इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। राम के तप की कथा(सन्धि ९०) भी इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है।

(घ) ध्यान—तप करने वाला साधक ध्यान द्वारा कर्मों का नाश करता है। घातिकर्मों का नाश करने के उपरान्त साधक को केवलज्ञान प्राप्त होता है। राम आदि ध्यान द्वारा ही केवली हुए हैं।

(ङ) अनुप्रेक्षाएँ—जैनदर्शन के अनुसार, शरीर तथा संसार की अन्यान्य वस्तुओं की प्रकृति का तथा उचित सिद्धान्तों का अनवरत चिन्तन ही 'अनुप्रेक्षा' है। अनुप्रेक्षा के बारह भेद माने गए हैं। वस्तुतः इन बारह अनुप्रेक्षाओं में जैन-दर्शन के बहुत से प्रमुख सिद्धान्त समाविष्ट हैं। अनुप्रेक्षा कर्मबन्ध से मुक्ति प्राप्त करने का प्रमुख साधन है। अतः विमलसूरि, रविषेणाचार्य तथा स्वयम्भु जैसे राम-कथाकारों ने अपने-अपने ग्रन्थों में अनुप्रेक्षाओं का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है।

इन्द्रजित ने हनुमान को नागपाश में आबद्ध करके रावण के सम्मुख उपस्थित कर दिया, तो हनुमान ने रावण को सन्मार्ग का उपदेश देते हुए द्वादश अनुप्रेक्षाओं का वर्णन किया। ये अनुप्रेक्षाएँ नीचे लिखे अनुसार हैं :—

१. **अध्रुव**—जीवन, सम्पत्ति, संसार—सब क्षणिक है, केवल धर्म अस्थिर नहीं है।

२. **अशरण**—मृत्यु से हमारी कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। इस अशरण अवस्था में धर्म ही जीव का एक मात्र सहारा है।

३. **एकत्व**—संसार में जीव का सुख-दुख में, जन्म-मृत्यु आदि में कोई भी साथी नहीं है। केवल उसके सुकृत दुष्कृत उसके साथ रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. **अन्यत्व**—शरीर, वैभव, स्वजन-परिजन सब दूसरे हैं। धर्म के अतिरिक्त जीव का कोई अन्य साथी नहीं है।

५. **संसार**—जीव चार गतियों में घूमता हुआ अपने पापों का फल भोगता रहता है।

६. **त्रिलोक**—जीव त्रिलोक में विभिन्न योनियों में उत्पन्न होते हुए पापों का फल भोगता रहता है।

७. **अशुचि**—यह अनुप्रेक्षा देह की घिनौनी स्थिति की ओर संकेत करती है।

८. **आस्रव**—अनेक प्रकार के कर्मों से जीव आच्छन्न रहता है।

९. **संवर**—यह अनुप्रेक्षा कर्म निरोध की ओर संकेत करती है।

१०. **निर्जरा**—इस अनुप्रेक्षा के अनुसार जीव उपवास, व्रत, तप आदि द्वारा कर्मफल का नाश करता है।

११. **धर्म**—इस अनुप्रेक्षा में जीवदया, मृदुता, चित्त की सरलता, लाघव, तपश्चरण, संयम, ब्रह्मचर्य सत्य आदि धर्म आते हैं।

१२. **बोधि**—इस अनुप्रेक्षा के अनुसार, जीव को यह दिन-रात सोचना चाहिए कि भव-भव में जिनेन्द्र मेरे स्वामी हों, भव-भव में मुझे सम्यक्ज्ञान, सम्यक्-दर्शन एवं निज गुण-सम्पत्ति की प्राप्ति हो और कर्म-मल का नाश हो।

(९) रामकथा का उपसंहार

राम : दीक्षा-तपस्या-निर्वाण

अन्त में रामकथा के नायक के जीवन के अन्तिम चरण पर प्रकाश डालना समीचीन जान पड़ता है। उसके आधार पर पाठक राम जैसे मोक्षगामी व्यक्ति के जीवन के साधनात्मक पक्ष के बारे में अनुमान कर सकेंगे।

लक्ष्मण की मृत्यु के पश्चात् राम मोहान्ध होकर उसे जीवित ही समझकर उसके शव को सुरक्षित रख रहे थे। परन्तु दो देवों द्वारा उन्हें उद्‌बोध दिया गया, तो उनका मोह दूर हुआ और उनकी आँखें खुल गईं। उन्हें अपनी मूर्खता पर ग्लानि अनुभव हुई। जब उनको बोध प्राप्त हो गया, तो देवताओं ने अपनी ऋद्धियों का प्रदर्शन उनके सम्मुख कर दिया। फिर लक्ष्मण का दाह-संस्कार करने के पश्चात् उन्होंने समस्त परिग्रह का त्याग किया और महाव्रतों को निष्ठापूर्वक स्वीकार किया। उन्होंने बारह प्रकार के कठोर तप किए, परीषह सहन किए और समितियों का पालन किया वे पहाड़ की चोटी पर ध्यान-मग्न होकर बैठ गए। एक दिन रात में उन्हें अवधिज्ञान की उत्पत्ति हुई। धीरे-धीरे उन्होंने संसार-भ्रमण के मूल कारण कर्मों के नाश के लिए तत्पर हो गए। षष्ठ उपवास करने के बाद जब वे धनकनक देश में पहुँचे, तो वहाँ के राजा ने उनको पारणा कराया। फलस्वरूप देवों ने दुन्दुभियाँ बजाते हुए उनका साधुवाद किया, अपार धन की वर्षा कर दी। तदनन्तर महामुनि राम ने धरती पर विहार किया और घोर तपश्चरण किया। फिर कोटिशिला पर बैठकर आत्म-ध्यान में लीन हो गए। अवधिज्ञान से उनकी इस स्थिति को जान कर सीता के जीव रूपी इन्द्र ने उन्हें विचलित करने का अपार प्रयत्न किया, फिर भी मुनिवर राम का मन अडिग रहा। अन्त में माघ शुक्ला द्वादशी के दिन उन्होंने चार घातिकर्मों का नाश करके परम उज्ज्वल केवलज्ञान प्राप्त किया, तो त्रिलोक-त्रिकाल उन्हें हस्तामलकवत् दिखाई देने लगे। तब इन्द्रादि देवों ने वहाँ आकर उनकी वन्दना की। तदनन्तर इन्द्र ने लवण आदि की स्थिति के बारे में जिज्ञासा प्रकट की, तो केवली मुनीन्द्र राम ने उनके स्थित्यन्तरों का वर्णन किया।

कितने ही दिनों के पश्चात् राम ने मोक्ष प्राप्त किया।

× × ×

उपसंहार

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जैन रामकथा के विवेकवान पात्रों के आचार-विचार जैन-दर्शन से अनुप्राणित हैं। जो इसका ध्यान नहीं रखते, उनका अधःपात हो जाता है। वस्तुतः दर्शन जीवन का लक्ष्य निर्धारित करता है, वह अमूर्त है, जबकि साधनापक्ष व्यावहारिक होता है। जैन रामकथा के अनुसार राम जैसे आदर्श पात्र व्यवहार-पक्ष का ध्यान रखते हुए जीवन के चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर होते जाते हैं।

कहा जा चुका है रामकथा के विमलसूरि, रविषेण, स्वयम्भु आदि रचनाकार धार्मिक दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रभावित है, न्यूनाधिक रूप से वे प्रचारक के स्तर पर उतर आते हैं। अतः अवसर मिलते ही वे दर्शन और साधना सम्बन्धी बातों की या तो चर्चा करते हैं या उन्हें व्यवहृत होते दिखाते हैं। विमलसूरि और रविषेण पहले आचार्य हैं, अतः उनकी कृतियों में इस प्रकार का विवेचन अधिक मिलता है, जबकि स्वयम्भु कवि पहले हैं, अतः वे सिर्फ उपदेशक के रूप में पाठकों के सामने नहीं आते। संक्षेप में जैन रचनाकारों ने जैन दार्शनिक दृष्टिकोण को सामने रखकर राम-कथा का वर्णन किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org